National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040; Impact Factor: RJIF 5.22
www.nationaljournals.com
Volume 2; Issue 2; May 2017; Page No. 92-95

उपभोक्तावादी संस्कृत : बदलती स्त्री छवि

डॉ0 संतोष कुमार सिंह

हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

भारत में भूमण्डलीयकरण ने बाजार–संस्कृति व उपभोक्ता–संस्कृति को जन्म दिया। यह संस्कृति मनुष्य को सदैव एक उपभोक्ता की दृष्टि से देखती जिसका प्रमुख उद्देश्य लाभ अर्जित करना है। इस नवपूँजीवादी संस्कृति एवं बाजार में उपभोक्ता को रिझाने, उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर अधिक माल बेचने के लिए महिलाओं को साधन (विज्ञापनों द्वारेा) के रूप में प्रयोग किया जा रहा है। आज के इस दौर में नारी किस तरह से पुनः उपनिवेशित संस्कृति का शिकार हाती चली जा रही, शायद उसका अहसास अभी उन्हें नही है। प्रसिद्ध नारीवादी लेखिका प्रभा खेतान का मानना है कि– ''भूमण्डलीकरण जीवन के हर कोने में अस्तित्व के हर रूप का वस्तुकरण करता है [1]।'' वास्तव में नारी देह आज मार्केटिंग की रणनीति का अहम केन्द्र बन गया है। भूमण्डलीकरण के इस मोह में बाजार ने मीडिया का सहारा लेकर स्त्रियों के मन में भोग और प्रदर्शन को नारी मुक्ति का पर्याय बनाकर, उन्मुक्त भोग–उपभोग की आधुनिकतम शैली को महज उपलब्धि बताकर उन्हें हर तरह से ठग रहा है। आज मीडिया एवं विज्ञापनों में भारी तादाद में महिलाएं दिखायी देती हैं जो एक नये ढंग की छवि में आ रही है, जो वस्तुतः औरतों का नुकसान ही करता है। भारतीय मीडिया महिलाओं की छवि, पश्चिमी पूँजीवादी मीडिया की तर्ज पर पेश कर रहा है। मीडिया द्वारा गढ़ी इस छवि का अन्तिम उद्देश्य उपभोक्तावाद की संस्कृति को सामाजिक वैधता प्रदान करना होता है और बहुत हद तक इस मुहिम में बाजार सफल होता दिखाई भी दे जा रहा है।

भारत को उदारीकरण, वैश्वीकरण की नीति का अनुकरण करते हुए लगभग पच्चीस वर्ष हो गए हैं। इन पच्चीस वर्षों में महिलाओं के लिए ही नहीं सृष्टि के हर जीवित प्राणी के लिए बहुत कुछ बदल गया है। उपभोक्ता–संस्कृति की शिकार स्त्री हमेशा से रही है। नारीवादी चेतना के रूप में बदलाव आ रहें हैं। स्त्री ने सोचना शुरू किया कि क्या ये विज्ञापन मेरे हित में है? स्त्रियों ने पहले–पहल मॉडल्स का विरोध किया विश्वसुन्दरी प्रतियोगिता का विरोध किया, पर नारीवादी चिंतकों को यह बात भली भाँति समझ में आ गया कि व्यक्ति का विरोध करने से कुछ नहीं होगा, बल्कि प्रतिरोध के माध्यम से बहुराष्ट्रीय निगमों की संस्कृति के प्रचार–प्रसार को रोका जाना चाहिए। प्रभा खेतान का कहना है कि– ''स्त्री सौन्दर्य की समकालीन परिभाषा तो मीडिया और विज्ञापन ही निर्मित करते हैं, अतः इनसे प्रभावित स्त्री असुरक्षित है और आत्मछवित के प्रति संशयग्रस्त हुई है। वह बार–बार अपने–आपसे पूछती है कि क्या मैं ठीक हूँ ? क्या मेरा रंग ठीक है ? चेहरे पर कोई दाग तो नहीं ? कमर ज्यादा चौड़ी नहीं [2] ?''

लेखिका टास्को अपने ऊपर निरंतर पड़ने वाले उपभोक्तावादी विज्ञापनों के प्रभावों को खारिज करती है। टास्को बाजारतंत्र का इसलिए विरोध करती हैं क्योंकि बाजारतंत्र न केवल स्त्री की आत्मछवि के लिए घातक है, बल्कि समस्त पर्यावरण को भी दूषित करता है। वह यह भी कहती है कि– ''एक नागरिक की हैसियत से हमें दो विरोधाभाषी प्रतिमानों का सामना करना पड़ता है जबकि इन दो में से किसी एक का चुनाव अत्यंत कठिन है [3]।''

भूमण्डलीकरण और बाजारीकरण के दौर में स्त्री छवि का प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है। नये परिवर्तित समाज में स्त्री की छवि बहुत कुछ बदली हुई नजर आ रही है। इन बदलावों के पीछे स्त्री विमर्श, स्त्री मुक्ति आन्दोलन और महिला सशक्तिकरण की भूमिका अहम है। स्त्री जीवन की विविध समस्याओं पर चर्चा होने के साथ ही उनकी विविध छवियों पर भी चर्चा हो रही है। एक तरफ मीडिया, विज्ञापन एक छवि गढ़ रहा है तो दूसरी तरफ इसके प्रतिपक्ष में साहित्यकार अपने साहित्य में एक नये छवि की तलाश कर रहे हैं। बहस का सिलसिला परस्पर जारी है, विचार चिंतन बहसें चल रही है जिससे निरन्तर स्त्री की छवि बदल रही है। दोनों ओर से अपने–अपने तर्क और दावे की पेशकश चल रही है। जहाँ विज्ञापन और मीडिया स्त्री को एक उपभोक्ता के रूप में दिखाती है, वहीं साहित्य इसे व्यक्तित्व और मानवीय गरिमा प्रदान करने का निरन्तर प्रयास कर रहा है। अब देखना है कि इन दोनों पक्षों में स्त्री की कैसी–कैसी छवियाँ निर्मित होती है?

हिन्दी साहित्य में देखा जाए तो स्त्री सभी युगों में मौजूद रही है। फर्क अब यह है कि पहले साहित्यकार अपनी रचना में स्त्रियों को निरूपति करते थे जबकि अब स्त्रियाँ स्वयं निरूपित कर रहीं हैं। बाजार केन्द्रित सभ्यता में स्त्री के लिए जगह होगी की नहीं, यदि होगी भी तो उसकी साख किस तरह को होगी? स्त्रियों द्वारा लिखी जा रही कहानी व उपन्यासों में इन प्रश्नों की भी गहन पड़ताल है। बिडम्बना तो यह है कि इन विज्ञापनों का शिकार स्त्री, अश्वेत जनता, गरीब तबके के लोग, युवा वर्ग एवं बच्चे अधिक हो रहे हैं। जिसके पास जितना कम साधन है वह उतना ही अधिक विज्ञापन के जाल में उलझ जाता है। विज्ञापन की दुनिया का जो आकर्षण है वह उसे भोगना चाहता है। बड़े आदमी का बेटा या ऐश्वर्या राय, करिश्मा कपूर, सोनाक्षी सिन्हा, कैटरीना कैफ, सफेद कमीज और नीली जींस में बिना किसी 'लोगों' के चल सकती है, पर स्कूल–कालेज की एक साधरण लड़की बिना किसी प्रतीक जिह्न के लट्ठे की सफेद कमीज और नीली जींस पहनकर कैमरे के सामने आने की हिम्मत नहीं करेगी। यह छवि आज की एक नयी स्त्री की है जो वैश्विक दुनिया के चकाचौंध में अपनी वास्तविक पहचान को छिपाने लगी है। यह स्त्री की छवि है जिसे बाजार ने गढ़ा है। यह स्त्री दुनिया के सामने स्त्री–मुक्ति की स्त्री की नयी छवि पेश कर रही है। वास्तव में यह स्त्री नहीं है बल्कि यह उससे निकली एक छाप है। ऐसी स्त्री, स्त्री के वास्तविक स्वरूप को लीलना चाहती है। किन्तु समकालीन कथा साहित्य में कुछ ऐसी स्त्रियाँ भी है जो स्वेच्छा से मुक्ति का मार्ग तलाशते हुए बाजार का रुख कर रही हैं और कुछ ऐसी स्त्रियाँ भी है जो गुलाम बनकर जबरन बाजार में ढकेल दी जाती है।

स्त्री मुक्ति की चिन्ता बाजार भी जाहिर करता है। यह अपने विज्ञापनों द्वारा स्त्री की मुक्ति का संदेश देता नजर आता है। बाजार

स्त्री की ऐसी छवि बना रहा है जो पितृकव्यवस्था से मुक्त दिखायी पड़ती है। आज हर वस्तु के विज्ञापन में स्त्री दिखायी देती है। विज्ञापन में स्त्री हर प्रोडक्ट को ऐसे पेश करती है जो कहीं न कहीं उसे आर्थिक, सामाजिक बन्धन से मुक्त कर रहा है। मध्यवर्गीय नारी की छवि घर के काम–काज से मुक्ति, निम्नवर्गीय नारी की छवि धूल–मिट्टी से मुक्ति, उच्चवर्गीय नारी की छवि देह से मुक्ति। स्त्री विज्ञापन के आतंक से मुक्त होकर अपने को परिभाषित करना चाहती है। सोचने सझने वाली स्त्री भी जानती है कि बाजार को हमारी जरूरत है। विशाल निगम यदि बाजार में कुछ भी परोसते है तो उनकी निगाह स्त्री के जेब पर है। दोनों पक्ष जानते है कि दाँव पर क्या लगा हुआ है ? स्त्री अपनी स्वतंत्रता चाहती है, पर स्वतंत्र होकर यह क्या करना चाहती है ? बहुनिगम कम्पनी इसे ही तो जानना चाहती हैं, ताकि इस नई स्त्री की जरूरत के हिसाब नया बाजार तैयार किया जा सके। इस तरह आज मीडिया–विज्ञापन तंत्र, सौन्दर्य उद्योग और मनोरंजन उद्योग की साँठ–गाँठ सबके सामने दिखायी दे रहा है। मनीषा झा का कहना है कि– ''स्त्री के सौन्दर्य से लेकर स्त्री की अस्मिता तक आज बाजार की निगाह में चढ़ा हुआ है। नारी की जब जिस छवि का उपयोग वह मनमाने ढंग से कर ले रहा है। स्त्री को आकर्षित करने के लिए पुरस्कार, यश, पैसा इत्यादि के प्रलोभन भी हैं। इस जाल से बच पाना आसान नहीं है [4] ।''

इस दौर की स्त्रियाँ अब पितृसत्तात्मक समाज द्वारा खीची गयी लक्ष्मण रेखा को पार कर जा रही हैं। स्त्रियाँ अब बने बनाए रास्ते पर न चलकर अपना रास्ता खुद बना रहीं हैं। अपनी जमीन तलाश रही हैं। स्त्री जीवन की दृष्टि से यह एक मजबूत छवि है जो समकालीन कथा साहित्य में लेखिकाएँ कर रही हैं। पुरूष समाज के वर्चस्व को तोड़ने के लिए स्त्री अनेक रूपों में मौजूद है। यहाँ स्त्री की नयी छवि के साथ प्राचीन छवि भी है। दरअसल सदियों से उपेक्षित स्त्री को अभी मुकम्मल जगह नहीं मिल पायी है जिसकी वजह से उनकी अनेक छवियाँ बन रही हैं।

कभी वह विद्रोही हैं, कभी यायावर है तो कभी 'खानाबदोश' की अपने होने को जैसा महसूस करती हैं और जिस रूप में उसे मुक्ति की संभावनाएँ नजर आती है वैसी अभिव्यक्ति समकालीन कवि साहित्य में हो रही है। प्रजनन और स्तनपान के अतिरिक्त कोई भी ऐसा कार्य क्षेत्र नहीं जो सिर्फ स्त्री ही कर सकती हो किन्तु रूटीन के उबाऊ कामों में पुरुष की भागीदारी अब भी न्यूनतम है। महानगरों और कामकाजी दम्पतियों में बहुत थोड़े पुरुषों ने इस दिशा में सकारात्मक भूमिका निभाई जरूर है लेकिन अभी भी बहुसंख्यक स्त्रियों को घर बाहर की भूमिका का निर्वाह अकेले करना पड़ता है। पति का असहयोग पत्नी को अकेला होने को विवश करता है। यह भूमण्डलीकरण और बाजारीकरण का प्रभाव है जिसके कारण भीड़ तंत्र में भी व्यक्ति अकेला महसूस करता है। आज समूची दुंनिया जैसे सिमटी जा रही है उसमें स्त्री की भूमिकाएँ भी बदलती नजर आती है।

21वीं सदी के प्रथम दशक के उपन्यास एवं कहानी में स्त्री की विविध छवियाँ मौजूद हैं। यहाँ परम्परागत स्त्री है तो उपभोगतावाद के दौर की नयी स्त्री छवि, विज्ञापन सुन्दरी, क्रेता–विक्रेता स्त्री भी है। परम्परागत स्त्री भी नई छवि के साथ मौजूद है, जो परम्परागत जड़ मूल्यों को तोड़कर अपनी नयी छवि की निर्मित कर रही है। वह नये मूल्यों की स्थापना के साथ मुक्त भी होना चाहती है, यह सत्र समकालीन हिन्दी कथा साहित्य (21वीं सदी) में विशेष रूप से गढ़ी गयी है।

बाजारवाद ने स्त्री की एक नयी छवि निर्मित की है। ये वे स्त्रियाँ हैं, जो अपनी देह को किसी कोठे के भीतर औने–पौने दामों और बीमारियों के बीच गलाने की बजाय, उसकी भरपूर कीमत वसूलना जानती है। ये परम्परागत वेश्याएं नहीं, अपनी देह को टकसाल में बदलती आधुनिकताएं है। ये भी धंधे वाली हैं, मगर दिखती नहीं। यही उनकी ताकत, खूवी और उनको ज्यादा दाम पर चलन में बनाए रखने का मंत्र है। यह एक नमूना है कालगर्ल के बाजार का। कालगर्ल देह की किसी एक थोक मंडी पर नहीं विकती–मिलती, बल्कि वे अपने होने और हासिल किये जाने की प्रक्रिया को दुर्लभ बनाए रखती है। दिलचस्प है कि हर कॉलगर्ल पूर्णकालिक रूप से यह धंधा नहीं करती। दूसरे कामों में लगी लड़कियाँ भी आज 'पार्टटाइमर' के तौर पर देह के इस पैसा उलगने वाले कारोबार में किस्मत आजमाती मिल जाती है। कालेज जाने वाली छात्राओं तक का प्रवेश भी इस गोरख धन्धे में हो चुका है। वेश्यावृत्ति का धंधा तो पुराना है लेकिन अब उसका यह रूप नया और तड़क–भड़क वाला है। आधुनिक युग के इस धन्धे ने हाट–बाजार का रूप ले लिया है। जैसे– मछली–बाजार, वस्त्र बाजार, सब्जी बाजार, गल्ला बाजार, वैसे ही देह का हाट बाजार। इस संदर्भ में गीताश्री का कहना है कि– ''भूमण्डलीकरण के दौर में स्त्री बाजार में खड़ी है– वस्तु की तरह, अपनी देह पर कीमत का 'टैग' चिपकाए। यह सच है कि भूमण्डलीकरण ने व्यापार को अहम बना दिया है, इसमें स्त्री का देह–व्यापार भी शामिल हो गया है। यह व्यवस्था एक नई तरह की दैहिक गुलामी, नए विध्वंस को उभार रही है। दुनिया का शायद सबसे पुराना यह धंधा आज हाइटेक हो गया है [5] ।''

अच्छे घरानों की किशोरियों से लेकर स्कूल–कालेजों की छात्राएं भी कालगर्ल के पेशे में हैं। म्यूजिक संस्थाओं की आय में भी यह धंधा खूब चल रहा है। ये लड़कियां मानती हैं कि एक रात 'सो लेने से' कुछ नुकसान नहीं होता। इसके बदले वे लुत्फ उठाती और खूब धन पाती हैं। ऐसी लड़कियां शौक मौज के लिए इस धन्धे में उतरती हैं और लेकिन इसे प्रोफेशन नहीं बनातीं। उनके इसे धंधे में स्थानीय पुलिस चौकियों का संरक्षण प्राप्त एक कालगर्ल सिमी का कहना है कि– ''हमें आने वाले खतरे की सूचना भी पुलिस से ही मिलती है। बदले में हम उनकी हर तरह से सेवा करते हैं [6] ।''

बाजारवाद ने स्त्री की अनेक छवियाँ गढ़ी है। जिसमें विक्रेता स्त्री उपभोक्ता स्त्री और सौन्दर्य प्रतियोगिता वाली स्त्रियाँ मुख्य रूप से हैं। मीडिया, बाजार और सेक्स क्रान्ति से स्त्री का गहरा रिश्ता है। ''सेक्स के प्रति उदासीनता दिखाने वाले भारतीय मध्यवर्ग की प्रकृति बाजार को पता है जिसकी चर्चा पवन कुमार भारत के मध्यवर्ग की अजीब दास्तान में करते है [7] ।'' समकालीन कथा साहित्य में इस प्रवृति को भी उद्घाटित किया गया है। जहाँ बोल्ड सेक्सी होना भी सौन्दर्य का एक प्रतिमान है।

आधुनिक तकनीकि ने स्त्री–पुरुष के बीच के भेद को लगभग समाप्त कर दिया है। मासिक धर्म, प्रजनन और गर्भाधान के अलावा स्त्रियों को पुरुषो के समान हर स्थिति का सामना करना पड़ रहा है। जैसे कभी आदिम युग में यायावर स्त्री को करना पड़ता था। इस संदर्भ में रेखा कस्तवार लिखती हैं कि– ''मानव विकासक्रम में आदिम युग की यायावर स्त्री के बारे में प्राप्त विविध विरोधाभावी मतों के बावजूद इस बात पर सहमत हुआ जा सकता है कि उस कठिन दौर में जब जीवित रहना ही जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य था पुरुष के सामान्तर स्त्री की भूमिका तब भी दोहरी ही थी। मासिक धर्म, गर्भाधान और प्रजनन की अनिवार्यता के मध्य स्त्री को उन्ही परिस्थितियों का सामना करना होता था जिनका पुरुष करता था [8] ।''

अब जबकि हर जगह पुरुष समाज से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ रही है तो उनके अन्दर की यायावरी प्रवृत्ति फिर से जाग गयी है।

आज स्त्री ने बाजारू हुए बिना बाजार में प्रवेश की कोशिश की है यह स्त्री बाजार में अपनी आत्मनिर्भरता के पैर जम रही है, नई स्त्री छवि के निर्माण में अपना योगदान दे रही है– ''उसकी नयी छवि धन उपार्जित करती है, वह समूची अर्थव्यवस्था को गाते देने वाली है। छवि उद्योग में, मीडिया के उद्योग में, नये सांस्कृतिक उद्योग में

पैदा होने वाली स्त्री अभी मर्दों के बराबर न सही, लेकिन उसके आस पास पैसा बनाती हैं [9]।'' और यह स्त्री वेश्या नहीं है जबकि इसके पहले की परम्परा रही है कि बाजार में स्त्री का सम्बंध वेश्या बनकर सम्भव होता रहा है।

उपभोक्तावाद ने स्त्री का वस्तुकरण कर दिया है जिसकी वजह से आज स्त्री हर विज्ञापन में दिखायी दे जाती है माल बेचते हुए। विज्ञापन में स्त्री देह का हर तरफ से इस्तेमाल किया जा रहा है। समाज ने अपना फ्रस्टेशन दूर करने के लिए स्त्री की ऐसी छवि निर्मित किया कि डस्टविन जैसे शारीरिक मानसिक कूड़े–कचरे को उसमें आसानी से डाला जा सकता है। तमाम कचड़ों को अपने अन्दर समेटते हुए स्त्री को खुश दिखना चाहिए। 21वीं सदी के प्रथम दशक के कथा साहित्य में स्त्री के अनन्त दुःखों की अभिव्यक्ति और विस्तार है। आत्महीन वस्तु का जो रूपक स्त्री के लिए मध्यकालीन दौर में रखा गया था, आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था स्त्री के उसी रूपक को नये सिरे से बढ़ रही है। स्त्री की भूमिका सिर्फ विज्ञापन तक सीमित है और पुरुष उत्पाक, नियामक, नियंत्रक और भोक्ता है स्त्रीवादी।

भूमण्डलीकरण द्वारा संचालित पूँजीवाद का स्त्री जीवन पर किस तरह प्रभाव पड़ा है? इस संदर्भ में प्रभा खेतान का विश्लेषण महत्वपूर्ण है– ''भूमण्डलीकरण अर्थव्यवस्था में आर्थिक रूप से पुरुष की तुलना में स्त्री को ज्यादा नुकसान हुआ है। क्या भूमण्डलीकरण से स्त्री की स्थिति में आर्थिक सुधार हुआ है या पहले की अपेक्षा में वह और कमजोर हुई है इसका उत्तर निर्भर करता है हमारे अपने सवाल पर। आखिर हम किस औरत की चर्चा कर रहे हैं ? भारत जैसे देश में जहाँ 60 प्रतिशत स्त्री गरीबी की सीमा रेखा से नीचे है वहाँ केवल 5–10 प्रतिशत स्त्रियों के सबलीकृत होने पर आखिर कितना फर्क पड़ेगा [10] ?'' साथ ही यह भी सच है कि उपभोक्ता संस्कृति सर्वाधिक रूप से विरोधी है क्योंकि अपनी नजर में स्त्री पुरूष की तरह स्वयं उपभोक्ता संस्कृति साधारण और विशिष्ट स्त्री के बीच दरार को बढ़ाती है। पूँजीवादी राज्य क्रमशः अपने लोककल्याणवादी कार्यों को समेटता चला जाता है। भूमण्डलीकरण इस तरह स्त्रियों में मुक्ति की आकांक्षा पैदा करता है किन्तु इसके साथ ही वह उसे ब्राण्डेड रूप दे देता है और स्त्री को आभासी मुक्ति ही मिल पाती है। वास्तव में उसके अधिकार बाजार व्यवस्था में कैद रहते है।

भूमण्डलीकरण की तेज आंधी विकसित पश्चिमी देशों से अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगमों, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बूते अपने साजो सामान के साथ बड़ी तेजी से भारत जैसे विकासशील और अविकसित देशों की ओर बह चली है। जिसका प्रमुख लक्ष्य है– कम्प्यूटर, इण्टरनेट, बेवसाइट, मीडिया, विज्ञापन, क्रेडिट कार्ड, मोबाइल आदि नई प्रौद्योगिकी के साधनों के जरिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के सामान को खपाने के लिए विकासशील देशों में बाजार खोलना और वहाँ क्रयशक्ति रखने वाले उपभोक्ताओं को अपनी वस्तुओं की ओर लुभाना एवं धन कमाना। उपभोक्तावाद उसी प्रकार हकीकत है जिस प्रकार बाजारवाद। प्रसिद्ध लेखिका अरूंधती राय का मानना है कि– ''मुक्त बाजार में बोलने की स्वतंत्रता, न्याय मानवाधिकार, पीने का पानी, साफ हवा की तरह बिकने वाला माल बना दी गयी है, उन्हें ही उपलब्ध हो जो उन्हें खरीद सकते है। जाहिर है जो ऐसा कर सकते हैं वे इस स्वतंत्रता का इस्तेमाल वैसी ही खबर और जनमत बनाने में करते हैं जो उनके हित में हो [11]।''

''सुन्दरता स्त्री का राजदण्ड है, बचपन से ही यह सीखते हुए मानस खुद को शरीर के अनुरूप ढाल लेता है और अपने सुनहरे पिंजड़े में घूमता सिर्फ अपने अपने कारागार को सजाना चाहता है [12]।''

स्त्री को देह श्रृंगार में व्यस्त रखकर पुरुष स्वयं के मनचीते कार्य करने के अवसर प्राप्त करते हैं। स्त्री के तमाम दुनिया से मुक्त रखकर देह की दुनिया में कैद कर दिया जाना ही उसका राजदण्ड है। बाजार और देह की इस कमेस्ट्री को समझते हुए कात्यायनी लिखती हैं– ''विश्व बैंक का मुक्त बाजार–निर्देशित नारीवाद यह 'नारीवाद' वस्तुतः बूढ़े शेर के हाथों में सोने का कंगन है, स्त्रियों को भरमा–ललचाकर उनका शिकार करने के लिए। इसीलिए विश्व बैंक स्त्रियों के प्रति इतना करुण–विगलित है। उनके घड़ियाली आँसुओं की यही असलियत है [13]।'' यहाँ स्त्री जीवन की उत्कृष्टता के संपादन की भूमिका स्त्री स्वयं करती नजर आती है। उसमें न तो अन्धानुकरण के प्रयत्न हैं न ही प्राथमिक आखेटक दृष्टि, बल्कि स्वतंत्र परिपक्व दृष्टिकोण की तलाश है। निरन्तर स्त्री संघर्ष को चित्रित करती हुई समकालीन कथा लेखिकाएं अपने लेखन के माध्यम से जिस नये सौन्दर्यशास्त्र को गढ़ रही है वही आज सवालों के घेरे में है, क्योंकि स्त्री जब पुरुष के समान अधिकार या बराबरी प्राप्त करेगी तो उसे उन वाहरी दबावों को भी झेलना पड़ेगा जिसे पुरुष समाज बाहर की दुनिया में झेलता है। विकसित टेक्नोलॉजी मीडिया, विज्ञापन और बाजार को बहुतेरी नारीवादी लेखिकाएँ स्त्री मुक्ति के पक्ष में देखती हैं, लेकिन बहुतेरी लेखिकाएँ इससे असहमति भी व्यक्त करती है।

बाजार स्त्री को श्रम का अवसर उपलब्ध कराया तो उससे पूरी कीमत वसूल करके। कारपोरेट जगत में काम करने वाली स्त्रियों को आज सब कुछ मुस्कराते हुए बर्दाश्त करना पड़ता है। उनके काम के घण्टों में उनके चेहरे पर तनाव, थकान नहीं, मुस्कान दिखनी चाहिए। बाजार ने भरपूर इस्तेमाल किया अपने फायदे के लिए या बाजार मुनाफा कमाने के लिए स्त्रियों का इस्तेमाल किया है।

उपभोक्तावाद के दौर में मीडिया स्त्री की कई तरह की छवि गढ़ता जा रहा है। बाजार ने विज्ञापन के लिए स्त्री–देह का उपयोग अपनी मनमाफिक कर रहा है। स्त्री के शरीर का हर अंग विज्ञापन में दिखाये जा रहे हैं जिसकी वजह से स्त्री का अंतस समाप्त होता जा रहा है और स्त्री देह एक 'माल' या 'प्रोडक्ट' के रूप में प्रयुक्त होने लगी है। लेखिकाएँ निन्तर मीडिया द्वारा निर्मित छवि पर हमला कर रही है क्योंकि वे जिस व्यक्तित्व की गरिमा की लड़ाई लड़ रही है वही व्यक्तित्व वस्तु के रूप में बदलता जा रहा है। इस छवि ने स्त्री के अस्तित्व पर संकट पैदा कर दिया है। ''लेकिन स्त्री छवि की समस्या तब और जटिल हो जाती है जब इसमें अस्तित्व तथा अस्मिता के प्रश्न शामिल हो जाते हैं। वैयक्तिक और सामूहिक अस्तित्व में संघर्ष शुरू होता है। परिवार युद्ध भूमि बन जाता है। संबंधों में दरार पड़ने लगती है [14]।''

भूमण्डलीकरण और बाजारीकरण के इस दौर में उपभोक्तावाद की संस्कृति का प्रभाव इतना अधिक हो गया है कि आज के समय में एक ही स्त्री नये नये रूपों में अवतरित हो रही है। इस दौर की स्त्रियाँ मुक्ति की आकांक्षा को लिए हुए छटपटा रही है और उनके भीतर परम्परागत प्रेम और त्याग की प्रतिभूमि, घर, परिवार, संतान के मोह से घिरी दिखायी जरूर पड़ती, दुख झेलती दुःख सहती, रोती विलाप एवं कलपती अधिक है पर समय का तकाजा कि वह अपने अस्तित्वबोध को पहचान रही है और मुक्ति के लिए संघर्ष करते हुए आगे बढ़ने का प्रयास जारी रखा है। वह समकालीन समय से समझौता करने वाली है तो समकालीन सवालों से टकराने वाली भी है। स्त्री की परम्परागत और आधुनिक दोनो छवियाँ कथा साहित्य में मौजूद है। समकालीन स्त्री लेखिकाओं के कथा साहित्य में स्त्री छवि की जितनी विविधता है उनती पुरुष लेखकों के साहित्य में नहीं। स्त्रियाँ यहाँ पर जितनी तरह की अपनी छवि निर्मित कर रही हैं उसके पीछे कारण– उनकी वास्तविक मुक्ति होने का है। इस तरह समकालीन कथा साहित्य में मुक्ति के लिए छटपटाती स्त्री छवि की दर्शन होते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. बाजार के बीच, बाजार के खिलाफ, प्रभा खेतान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सस्करण 2004, पृ0 32
2. भूमण्डलीकरण ब्रांड सस्कृति और राष्ट्र, प्रभा खेतान, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृ0 116
3. बाजार के बीच, बाजार के खिलाफ, प्रभा खेतान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सस्करण 2004, पृ0 143
4. समय संस्कृति और समकालीन कविता, मनीषा, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण 2011, पृ0 73
5. स्त्री आकांक्षा के मानचित्र, गीताश्री, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2014, पृ0 55
6. वही, पृ0 56
7. भारत के मध्यवर्ग की अजीब दास्तान, पवन कुमार वर्मा, राजकमल प्रकाशन, बैक पेपर, सस्करण–2009, पृ0 147 से 153 तक
8. स्त्री चितन की चुनौतियां, रेखा कस्तवार, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ0 40
9. वही, पृ0 129
10. भूमण्डलीकरण और स्त्री के प्रश्न, प्रभा खेतान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2004, पृ0 50
11. महिला कथाकारों के उपन्यासों में समय समाज और संवेदना, प्रसाद वीरेन्द्र सिंह यादव, पौ. पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण 2012, पृ0 203
12. स्त्री लेखन और समय के सरोकार : हेमलता महेश्वर, आलोचना, संपा0 नामवर सिंह शताब्दी अंक 19–20–2005 से, पृ0 181, राजकमल प्रा.लि., नई दिल्ली।
13. दुर्गद्वार पर दस्तक : काव्यायनी, पिरकल्पना प्रकाशन, लखनऊ संस्करण 1998, पृ0 27
14. स्त्री मुक्ति के प्रश्न, देवेन्द्र इस्सर, संवाद प्रकाशन, मेरठ, प्रथम संस्करण 2009, पृ0 98